

गौपूजा

रतनलाल बसंत

आजकल का सब से बड़ा देश द्रोह है

मानव समाज जब तक पाषाण और धातुओं के हथियार बना कर उन का प्रयोग नहीं जान पाया था, तब तक उस ने स्वभावतः अपने को पीड़ा देने में समर्थ पशुओं तथा अन्य मानवेतर प्राणियों में किसी दैवी शक्ति का आरोपण कर के उन को पूजा द्वारा प्रसन्न करने की चेष्टा की. संसार के सभी भूभागों में इस प्रकार की पूजा रही है और आज भी अनेक जंगली व पिछड़ी हुई जातियों में यह प्रचलित है.

हमारे देश में सर्पों और बंदरों इत्यादि की पूजा तथा कच्छ, मच्छ, वाराह और नृसिंह आदि के रूप में भगवान के अवतरित होने की कल्पना उसी युग की देन है, जिसे हम अभी तक ढोए जा रहे हैं.

इस के पश्चात मानव जब कुछ विकसित हुआ और उस में भावुकता का उद्रेक होना प्रारंभ हुआ, तो उस ने ऐसे पशुओं तथा अन्य प्राकृतिक उपादानों की पूजा आरंभ कर दी, जिन से वह उपकृत होता था. मेघ, अग्नि, जल, नदियाँ, समुद्र, वृक्ष आदि की पूजा प्रचलित होने का आधार यही है.

गायबैलों की पूजा भी इसी प्रकार प्रारंभ हुई और न केवल भारतवर्ष में ही, बल्कि मेसोपोटामिया की असुर सभ्यता युग की खुदाइयों से ले कर यहूदी, ईसाई, मुसलमान, पारसी आदि धर्म ग्रंथों में इस का विवरण मिलता है. ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य सभी पशुओं की अपेक्षा गाय

को पालतू बनाने और उस से लाभ उठाने में मानव को सब से शीघ्र सफलता मिल गई. प्रारंभ में तो गाय को केवल खाने के लिए ही पालतू बनाया गया, क्योंकि तब तक मानव ने स्थायी रूप से कहीं बस कर खेती करना नहीं सीखा था. उस समय गाय इसी प्रकार पाली जाती थी जिस प्रकार आज बकरे और मेंढे पाले जाते हैं. उस की उपयोगिता केवल यही थी कि इस निरुपद्रवी पशु को चाहे जितने दिन तक जीवित रख कर आवश्यकतानुसार उस का मांस खाया जा सकता है.

किंतु गाय के अमृततुल्य दूध और बछड़ों की कृषिकार्य में उपयोगिता के कारण गौमांस का भक्षण कम होता गया. वेदों में अनेक स्थानों पर लिखा मिलता है : "यजमान के पशुओं की रक्षा करो. भेंड़ मत मारो, गाय मत मारो, एक खुर वाले पशु को मत मारो." इस से स्पष्ट है कि गौ इत्यादि के वध का निषेध केवल इस लिए किया गया था कि इस से पूर्व गौवध प्रचलित था.

इस से भी अधिक पुष्ट प्रमाण ऋग्वेद का यह मंत्र उपस्थित करता है :
 कर्हिस्वित सा त इन्द्र चेत्यांसदघस्य
 यदिभनदो रक्ष एषत् की
 मित्रक्रुवो यच्छशने न गावः प्रथित्या
 आप्रगम्यां शयंते.

"हे इंद्र, जिस अस्त्र व बाण को फेंक कर तुम ने पापी राक्षस को काटा था, वह कहां फेंकने योग्य है? जैसे गौहत्या के

स्थान पर गाएँ काटी जाती हैं, वैसे ही तुम्हारे इस अस्त्र से निहित हो कर भिन्न-द्वेषी राक्षस लोग पृथ्वी पर गिर कर सदा के लिए सो जाते हैं।”

स्पष्ट है कि इस मंत्र का रचना काल गौवध निषेध करने वाले मंत्रों से प्राचीन है। वास्तव में भारतवासियों में भी जब गाय मृदा के रूप में प्रचलित होने लगी, तो कहीं गाय के वध पर थोड़ा प्रतिबंध लगा। इस प्रतिबंध का कारण धार्मिक नहीं, विशुद्ध आर्थिक था। किंतु धार्मिक पुरोहितों की जिह्वा को गौमांस का स्वाद लग चुका था, अतः उन्होंने गौमेध यज्ञ की प्रथा चलाई और अतिथि सत्कार के लिए भी मधुपर्क निर्माण करने हेतु गौहत्या को आवश्यक कर्तव्य घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप आर्थिक दबाव के कारण गौवध अधार्मिक ठहरा दिए जाने पर भी दूसरी ओर गौवध धार्मिक भी बना रहा।

भयंकर पाप

हमारे धर्मशास्त्रों में एक ओर गौवध को भयंकर पाप बताया जाना, और फिर भी शतपथ ब्राह्मण इत्यादि धर्मग्रंथों में गौमेध का वर्णन, महाभारत में राजा रतिदेव द्वारा अतिथियों हेतु सहस्रों गायों का नित्यप्रति वध करने की कथा और महाकवि भवभूति के प्रसिद्ध नाटक रामचरित के चतुर्थ अंक में महर्षि वाल्मीकि द्वारा गुरु वसिष्ठ को गौवत्सरी का मांस भेंट करने के वर्णन में परस्पर जो विरोधाभास दिखाई देता है, उस का यही कारण है।

सुत्तनिकाय इत्यादि बौद्ध ग्रंथों में भगवान् बुद्ध द्वारा तत्कालीन ब्राह्मण समाज में गौमांस भक्षण प्रथा के प्रचलित होने की निंदा किया जाना यह सूचना देता है कि आज से केवल 2,500 वर्ष पूर्व भी ब्राह्मणों में गौमांस भक्षण प्रचलित था। वास्तव में बौद्ध धर्म के कारण अहिंसा का आंदोलन जब इस देश में चला, तभी गौहत्या के प्रति वर्तमान धारणाएँ बनीं, जो

आज देश के लिए और स्वयं गौवंश के लिए भयानक संकट का कारण बन गई हैं।

हमारे देश में गाय के प्रति ऐसी भयानक भक्ति भावना ने घर कर लिया है कि उसे आधार बना कर राष्ट्रविरोधी शक्तियाँ बड़े से बड़ा लाभ उठा लेती हैं। विदेशी आक्रांताओं द्वारा अपनी फौज के आगे गौ समूह ले कर चलने और फिर गायों के मारे जाने के भय से भारतीय राजाओं द्वारा उन का मुकाबला न करने और अपनी स्वतंत्रता को उन के हाथों में निरीह भाव से सौंप देने विषयक अनेकानेक लोककथाओं को यदि हम छोड़ भी दें, तो स्वतंत्र भारत के हाल में ही प्रथम चुनावों में अनेक प्रतिक्रियावादी तथा रुढ़िवादी दलों द्वारा गौवध रोकने के नाम पर वोटों की अपील करना और कहींकहीं उन को बलवान समर्थन मिल जाना यह प्रकट करता है कि इस भावुकता को उभार कर कुछ किया जा सकता है।

अन्न का भारी अकाल होने पर भी नीलगायों को (जो पशुशास्त्र के अनुसार गौवंश से दूर का भी संबंध नहीं रखतीं) केवल उन के नाम में गाय आ जाने के कारण मारे जाने का विरोध करने की मूढ़ता भी हमारी इसी गौभक्ति का परिणाम है। यद्यपि यह सभी पढ़ेलिखे व्यक्ति जानते हैं कि केवल नील गायों द्वारा लाखों व्यक्तियों का पेट भर सकने योग्य अनाज नष्ट कर दिया जाता है, किंतु जिस देश में हजारों मनुष्यों का वध गाय के नाम पर हो चुका हो और होने की संभावना हो, वहाँ इतनी मूढ़ता होना आश्चर्य की बात नहीं है।

इस के अतिरिक्त हमारे देश में विदेशियों से कई करोड़ रुपए का ऐसा सामान आता है, जो गाय और बैलों के चमड़े से बनाया जाता है। हमारे प्राचीन धर्मशास्त्रों और गृह्यसूत्रों के अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीन काल में सोमलता गौचर्म पर ही रख कर कटी जाती थी, और वधु जब पतिगृह में आती थी तो सर्वप्रथम उसे लाल बैल के चमड़े पर ही अपने पति के साथ

बैठाया जाता था। आशय यही है कि गौचर्म और बैल के चमड़े का न केवल प्रयोग होता था, बल्कि उन का प्रयोग शुभ माना जाता था, जो उस युग के रुढ़िवाद का प्रतीक है।

किंतु आज हमारी गौभक्ति प्राकृतिक मृत्यु से मरी हुई गायों के भी चमड़े, रक्त और हड्डियों का उपयोग करने की आज्ञा नहीं देती। न जाने ऐसी कितने लाख मरी हुई गाय या तो जमीन में दबा दी जाती हैं या नदियों में बहा दी जाती हैं, जबकि उन के मृत शरीर के उपादानों का प्रयोग कर के हम उन करोड़ों रुपयों को बचा सकते हैं, जो हमें गौचर्म और हड्डियों से बने हुए माल को खरीदने के लिए विदेश भेजने पड़ते हैं। गांधीजी ने इस संबंध में कुछ कार्य प्रारंभ भी किया था, जो आज भी चल रहा है, किंतु गौपूजा की भावना के कारण वह व्याप्त नहीं हो सका।

दस आने में गौदान

गंगातट के तीर्थों में पंडोपुरोहितों को एक दुबलीपतली गाय को पानी में खड़ा किए, और पांच आने, दस आने या सवा रुपया ले कर निर्धन व मूढ़ गौभक्तों को गौदान का पुण्य बांटते भी हम सभी ने देखा होगा। दिनरात पानी में खड़ी रहने से उस गाय को जो भयानक वेदना भोगनी पड़ती है, तथा कुछ विशेष त्योहारों पर गायों को जिस प्रकार अन्नकूट खिलाखिला कर रोगिणी बना दिया जाता है, यह सब हमारी गौभक्ति का ही परिणाम है।

खासखास पर्वों पर इतने उत्साह से गौदान किया जाता है कि एकएक पंडे के पास दसियों गाएँ पहुँच जाती हैं। इतनी गायों को खिलानेपिलाने में असमर्थ वह पंडा कसाइयों के तिलकधारी हिंदू दलालों को वे गाएँ बेच कर अर्थ और मोक्ष में जिस हास्यास्पद तरीके से सामंजस्य उपस्थित करता है, वह और भी भयानक है।

आज प्रत्येक छोटेबड़े नगर में पचासों चालाक गृहस्थ दूध दुह कर गाय को खला छोड़ देते हैं, क्योंकि उन का अनुभव है कि

उन की गाय चाहे जिस का जितना नुकसान कर दे गौमाता को कोई कुछ नहीं कहेगा। ये गाएँ भक्ष्यअभक्ष्य खाती फिरती हैं और अनेक भयानक रोगों के कीटाणुओं को अपने दूध में प्रश्रय दे कर राष्ट्र के स्वास्थ्य को नष्ट करती हैं। भुवाली सैनिटोरियम के भूतपूर्व अध्यक्ष डा. शंकरलाल गुप्त ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत में क्षय रोग' में स्पष्ट लिखा है कि भारत में तपेदिक के इतने भीषण प्रसार का एक मुख्य कारण अधिकांश गायों का क्षयप्रसृत होना है। यह सब भी हमारी विशेष गौभक्ति का ही परिणाम है।

यह भी विचार योग्य है कि सदियों से चली आ रही गाय के प्रति हमारी इस मूढ़ श्रद्धा से गाय को क्या लाभ हुआ है? गाय का प्रश्न मानव समाज के स्वास्थ्य से अति निकट का संबंध रखता है। अतः इस संबंध में प्रायः गणनाएँ हुई हैं और उन की रिपोर्टों से हम इस प्रश्न का उत्तर पा सकते हैं।

इस संबंध में विचार करते समय यह और भी उचित होगा कि हम गौभक्त जन गौभक्षक देशों की गायों के आंकड़े भी अपने सामने रख लें और फिर दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करें।

सन 1940 की पशुगणना रिपोर्ट बताती है कि सन 1935-40 के मध्य दक्षिणी अफ्रीका में 14 प्रतिशत, पोलैंड में 8 प्रतिशत, इंग्लैंड में 18 प्रतिशत और जर्मनी में 5 प्रतिशत वृद्धि गायों की संख्या में हुई, किंतु हम गौरक्षकों के देश में इस काल में गायों की संख्या 13 प्रतिशत कम हो गई।

किंतु गाय के स्वास्थ्य संबंधी आंकड़े तो इस से भी भयानक हैं। इन के अनुसार डेनमार्क में प्रति गाय से वार्षिक रूप से औसतन 87 मन 22 सेर, स्विटजरलैंड में 81 मन नौ सेर, बेलजियम में 76 मन 4 सेर, इंग्लैंड में 61 मन 18 सेर, जर्मनी में 66 मन 12 सेर दूध का उत्पादन होता है। किंतु भारतवर्ष में यह औसत केवल 6 मन 22 सेर ही है अर्थात् हमारे गौपूजक देश की गायों से गौभक्षक देशों की गाएँ दस गुने से

चौदह गुने तक अधिक दूध देती हैं।

गौभक्षक देशों में दूध की खपत अधिक

इस का परिणाम यह है कि विदेशों में आज दूध की नहरें बह रही हैं। वहां दूध का उत्पादन इतना अधिक है कि वे केवल उसे पीने के ही काम में नहीं लाते, बल्कि उस का दूसरा सामान भी बनाने लगे हैं। इस बारे में 'इंडियन फार्मिंग', जुलाई 1942 के अंक में छपा है : "फाउंटनपेनो के खोल और एवरशार्प पेंसिलें दूध से बनती हैं। लिखने के बड़िया कागजों पर चमक दूध की पालिश से ही आती है। हवाई जहाज का प्लाईवुड दूध की सहायता से ही बनता है।"

गौभक्षक देशों में जब कि प्रत्येक मनुष्य के पीछे, हमारे यहां की अपेक्षा डेढ़ से ले कर नौ गुना तक अधिक दूध की खपत होती है इसी का परिणाम है कि एक वर्ष से कम अवस्था के बालक यदि इंग्लैंड में 1,000 में से 192, डेनमार्क में 136 और न्यूजीलैंड में केवल 2 मरते हैं, तो भारत में उन की संख्या 261 प्रति हजार है। और यदि इंग्लैंड में औसत उम्र 53, न्यूजीलैंड में 58, डेनमार्क में 56, अमरीका में 59 वर्ष है तो भारत में केवल 23 वर्ष है। इस संबंध में किसी समय के संयुक्त प्रांत के आरोग्य विभाग के अधिकारी कर्नल मेकटेगेर्ट ने कहा था, "सुशिक्षित दाइयों की फौज खड़ी करने की अपेक्षा गरीबों को दूध सुलभ हो, इस प्रकार दूध सस्ता कर देना ही बाल मृत्युओं की संख्या घटाने का सब से अच्छा तरीका है।"

भारत में ऐसे सुझाव प्रति वर्ष दिए जाते हैं, किंतु इन पर अमल नहीं हो पाता। इस के विपरीत विदेशों में युद्ध काल में भी दूध सस्ता रखने की विशेष व्यवस्था की गई थी। इंग्लैंड में तो सीमित आय वाले एक विशेष वर्ग को केवल एकडेढ़ आने सेर दूध मिलता था।

उपरोक्त तथ्य स्पष्ट करते हैं कि गाय के प्रश्न से सारे राष्ट्र के स्वास्थ्य और प्रकारांतर से उस की सर्वांगीण उन्नति का

प्रश्न जुड़ा हुआ है, अतः हमें अत्यंत धैर्यपूर्वक इस समस्या पर विचार करना है।

यह स्पष्ट है कि जबतक भारतीय गाय इतना अधिक दूध देने में समर्थ नहीं हो जाती कि उस का पालनपोषण आर्थिक दृष्टि से लाभदायक हो, तब तक केवल कानून बना देने से उस की रक्षा नहीं हो सकेगी। प्रमाणस्वरूप, भारत स्वाधीन हो जाने के पश्चात सैकड़ों म्युनिसिपल डिस्ट्रिक्ट बोर्डों ने अपने निर्वाचन क्षेत्रों की जनता से वाहवाही लूटने के लिए गौवध पर प्रतिबंध लगा दिया है, अनेक रियासतों में तो पांचपांच सौ वर्षों से गौवध नहीं हुआ। किंतु वहां भी गौवंश की उन्नति नहीं हो सकी, अवनति ही होती गई और अब भी हो रही है। इस के विपरीत जैसा की ऊपर कहा जा चुका है, अनेक ऐसे देशों में जहां गौमांस भक्षण पर्याप्त मात्रा में होता है, गौवंश की उन्नति आशातीत रूप से हुई है।

आर्थिक दृष्टि से गाय का पालन तभी लाभदायक होगा जब कि उस की नसल सुधरे, और नसल सुधारने के लिए सर्वाधिक आवश्यक दो बातें हैं :

1. रोगी और दुर्बल सांडों तथा गायों का विनाश।

2. भविष्य में भी केवल उन बछड़ों को ही सांड बनने देना, जो इस योग्य समझे जाएं।

हमारे गौपूजक समाज को ये दोनों ही उपाय संख्या की भांति जान पड़ेंगे, लेकिन उन को समझ लेना चाहिए कि यदि वे दूध देने वाली युवा गायों को बचाना चाहते हैं, गौवंश की वृद्धि चाहते हैं। अन्न के लिए भारत को स्वावलंबी देखना चाहते हैं और हजारों-लाखों भारतीय मानव संतानों को अकाल मृत्यु से बचाना चाहते हैं, तो उन को इन सुझावों को अपनाना ही होगा। इस के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भारतीय अर्थशास्त्री डाक्टर राधाकमल मुखर्जी ने अपनी पुस्तक "फूड प्लानिंग फार फोर हंडरेड मिलियंस" (40 करोड़ की आहार

योजना) में लिखा है :

"अच्छे ढोरों के लिए कठिनाई से जितना चारा पूरा होता है, उतने में निकम्मे पशुओं को अधपेट खिला कर पाला जाता है, क्योंकि चारे और चरागाहों की कमी है। अधिक चराई के कारण घास के मैदान उजड़ते हैं। इस से बरसात में उन की सतह की मिट्टी बहती है। परिणामस्वरूप चारे के पोषक गुण में कमी आती है। इस के कारण चारे में फास्फोरस और औक्सीमीन की कमी हो जाती है और कभीकभी हानिकारक हो जाता है। दूसरी तरफ कमजोर पशुओं से गहरी जूताई नहीं हो पाती और पूरी खाद भी नहीं पड़ती, इस से खेती लायक जमीन भी खराब हो जाती है। स्पष्ट है कि ढोरों को जितना ही खराब आहार दिया जाएगा उतना ही खराब आहार वे उत्पन्न करेंगे।"

इस के बाद डाक्टर मुखर्जी नसल सुधार की सब से मुख्य कठिनाई बताते हुए लिखते हैं।

"भारतवर्ष में पशुओं की संख्या जितनी बढ़ गई है, उन की शक्ति उतनी ही कम हो गई है। यह क्रम अब इतना बढ़ गया है कि अवनति को रोकने के लिए निकम्मे पशुओं का कम करना बहुत आवश्यक है। अति प्राचीन काल की धार्मिक एवं सामाजिक भावनाएं, जिन के रहने से आजकल गड़बड़ी होती है, इस दिक्कत को और भी बढ़ाती है।"

गायों के साथ अत्याचार

गाय या बैल को मारना हिंदू धर्म में घोर पाप है। बहुत कठिन समय में भी कट्टर हिंदू प्रायः गौवंश को बेचने में हिचकता है, क्योंकि खरीदार प्रायः कसाई होते हैं... जब तक हिंदू अपनी भावना से पूरी तरह तोबा नहीं कर लेते और भारतीय खेतीहर पशुपालन को व्यावहारिक दृष्टि से नहीं देखते, तथा वे ऐसे ढोरों की रक्षा करते जाएंगे, जो जन्म से ले कर मृत्यु तक किसी काम के नहीं हैं। डाक्टर मुखर्जी की सम्मति में तब तक इस समस्या को

सुलझाया नहीं जा सकता है।

अब गौपूजक भाइयों को सोचना है कि वे संपूर्ण गौवंश को इसी प्रकार तिलतिल कर के मारना चाहते हैं, अथवा थोड़ी सी गायों का मोह छोड़ कर शेष गाय, बैलों और असंख्य मानव संतानों की रक्षा कर लेना अधिक श्रेयस्कर समझेंगे। उन को जरा बंबई, कलकत्ता और मद्रास इत्यादि बड़े शहरों में जा कर देखना चाहिए कि वहां गायों पर क्या वीतती है। निम्नलिखित उदाहरणों से मेरी बात स्पष्ट हो जाएगी।

घोर हृदयहीनता

कलकत्ता के जीव दया मंडल के सभासद मैत्र बाबू ने अपने एक लेख में लिखा था : "कलकत्ते के ग्वाले गाय को दूहते समय गाय की योनि में फूंक मारते हैं या खारा पानी डालते रहते हैं, अथवा उस में उस की पूंछ, आदमी का हाथ या चार सूत व्यास वाला अठारह सूत लंबा घास का पमला रखते हैं। इस से पशु इस तरह कराहते हैं कि पास खड़े आदमी को उन पर दया आए बिना नहीं रहेगी। पशु की पीठ झुक जाती है और आंखें फट जाती हैं। वह कांपता रहता है और किसी आदमी को अपनी पूंछ की तरफ आते देखते ही बिदकने लगता है।"

"कलकत्ता नगर तथा उस के आसपास लगभग दस हजार गाएँ हैं जिन में से लगभग पांच हजार को नित्यप्रति यह वेदना भोगनी पड़ती है।"

डाक्टर मोरोबो ने कलकत्ता कारपोरेशन के सम्मुख गौरक्षा विषयक जो निबंध पढ़ा था, उस का एक अंश यह है : "प्यूरी नामक पीला रंग बनाने के लिए ग्वाले गाय को केवल आम के पत्ते खिला कर रखते हैं और इस के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु न खाने को देते हैं, न पीने को पानी देते हैं उस का पेशाब बाजार में अच्छे दामों में बेच लेते हैं, लेकिन बेचारी गाय भूख से तड़पतड़प कर मर जाती है।"

निश्चय ही गायों के साथ ऐसी घोर

हृदयहीनता केवल इसलिए होती है कि उन में इतना अधिक दूध देने की शक्ति नहीं रही, जिस से कि वे दूध के व्यापार के लिए लाभदायक हो सकें। परिणामस्वरूप उन से कुछ ही दिनों में अधिक से अधिक दूध प्राप्त करने के लिए दूध प्रयास किए जाते हैं। बड़े नगरों में यह आम रिवाज सा है कि वहां के ग्वाले बछड़ों को इस भय से नहीं पालते कि वे गाय के दूध में हिस्सा बंटाएंगे। अतः वे उन को सड़कों पर भूखों मरने के लिए छोड़ देते हैं, जहां वे ट्रामों या मोटरों की लपेट में आ कर अथवा भूख से ही दम तोड़ देते हैं, इस प्रकार मरे हुए लगभग बीस हजार बछड़ों के शव अकेली बंबई कारपोरेशन की कूड़ा गाड़ियों द्वारा प्रति वर्ष ढोए जाते हैं।

इसी प्रकार सांडों के संबंध में बीसवा-दर (गुजरात) के एक सज्जन ने गांधीजी को लिखा था :

"बहुत समय से कुआरी मृत्यु के पश्चात् 'लील' विवाह करने की प्रथा इधर प्रचलित है, जिस के अनुसार एक बछड़े और बछिया की शादी कर दी जाती है और बछड़े को लोहे की छड़ों से दाग दिया जाता है और फिर उसे स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है।

"इस काम में कमजोर बछड़े लिए जाते हैं। वे बड़े हो कर आवारा फिरते रहते हैं और खड़ी फसल को नुकसान पहुंचाते हैं, फलस्वरूप मार खाते हैं। कभी इन्हें कांटे सुलगा कर जला दिया जाता है और कभी इन की आंखों में मिर्च भर कर इन को मृतप्रायः कर दिया जाता है।

"ये आवारा सांड कमजोर औलाद पैदा करते हैं। इस कारण गौधन घटता जाता है। किसान ऐसे बछड़े पालना नहीं चाहते, क्योंकि इन को तो बैल चाहिए। ऐसी मान्यता है कि घर के पले बछड़े को खस्ती करने में पाप लगता है, अतः किसान गौपालन नहीं करते।"

वास्तव में यह अकेले किसी एक प्रदेश की कथा नहीं है, बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष में थोड़े हेरफेर से गौपूजा के नाम पर यही

होता रहा है। और इस के कारण गाय तथा उस के साथ संपूर्ण राष्ट्र रसातल की ओर गिरता जा रहा है। निकम्मे और अपंग गाय, बैल या सांडों के वध का प्रस्ताव सुनते ही जिन की आंखों से अंगारे बरसने लगते हैं। उन को यह स्थिति भी देखनी चाहिए और तब सोचना चाहिए कि क्या गौवध इस से भी बड़ा पाप है। आज सब से बड़ी आवश्यकता ऐसा कानून बनाने के लिए आंदोलन करने की है जिस के अनुसार :

1. स्वस्थ दुधारू जानवरों का वध, चाहे वह गाय हो या भैंस अथवा कोई अन्य दुग्धोपयोगी जीव, कठोर रूप से दंडनीय ठहरा दिया जाए।

2. अस्वस्थ, बेकार, अपंग, निठल्ले, वृद्ध और किसी अन्य दृष्टि से अनुपयोगी जानवरों का पालनपोषण भी कठोर दंडनीय घोषित कर दिया जाए।

3. बाजार में फिरने वाली गायों और आवारा सांडों को सरकारी पिजरापोलों में ले जाया जाए और उन में से वही जीवित रखे जाएं जो पूर्णतः स्वस्थ हों। इन स्वस्थ जानवरों को भी केवल सरकारी पशु-शालाओं में ही रखना चाहिए-उन को आवारा नहीं फिरने देना चाहिए।

4. सांड, केवल सरकारी पशुशालाओं में ही तैयार किए जाएं। व्यक्तिगत रूप से सांड छोड़ना गैरकानूनी ठहरा दिया जाए।

5. धर्म के नाम पर चलने वाली संपूर्ण गौशालाओं को सरकारी प्रबंध में ले लिया जाए।

6. सरकारी पशुशालाओं में गौपालन की भी शिक्षा दी जाए तथा दूध के व्यापार की वैज्ञानिक रीति बताई जाए।

7. मृत गायबैलों के शरीरों को मिट्टी में दबाना या जलप्रवाह कराना गैरकानूनी ठहरा दिया जाए। सरकारी पशुशालाओं में उन के लिए भी व्यवस्था होनी चाहिए।

8. नवजात बछड़ों को लेने और पालन करने की व्यवस्था सरकारी तौर पर की जाए। ऐसा प्रबंध हो कि वहां किसान अपने बछड़ों को वैज्ञानिक रीति से खस्ती करा

सकें या बछड़े और आवश्यक रकम दे कर बैल प्राप्त कर सकें। वृद्ध व अशक्त बैलों के विनिमय का प्रबंध भी ये पशुशालाएं करें।

निश्चय ही उपरोक्त मसौदे में बहुत से संशोधन अपेक्षित होंगे, किंतु आशय यही है कि इस संबंध में हमें अपनी भावुकता और धार्मिक रूढ़ियों को एक किनारे रख

कर केवल मानव, राष्ट्र और गौहित के आधार पर ही विचार करना चाहिए, और यह समझ लेना चाहिए कि जब तक हम लोग ऐसा नहीं करेंगे, तब तक गाय को नहीं बचा सकेंगे, और यदि गाय नहीं बचती तो हमारा राष्ट्र भी नहीं बच सकेगा. ●●

गौपूजा

रतनलाल बंसल

आलोचनाओं व आपत्तियों के उत्तर

सरिता में प्रकाशित मेरे लेख 'आज का सब से बड़ा देशद्रोह-गौपूजा' पर हिंदीउर्दू के कुछ पत्रों ने और कुछ संस्थाओं के अधिकारियों ने अत्यंत तीव्र रोष प्रकट करते हुए, लेख के विरुद्ध एक आंदोलन खड़ा कर देने की चेष्टा की है।

मुझे सब से अधिक आश्चर्य तो इस बात पर है कि इन आलोचकों और हिंदू धर्म व संस्कृति के स्वनिर्वाचित रक्षकों ने मेरे लेख के उस भाग को क्यों जानबूझ कर दृष्टि से ओझल कर दिया है, जिस में मैं ने कहा है कि केवल पूजा न कर के दूध देने वाली व उपयोगी गायों की पूरी तरह रक्षा करना हमारी सब से बड़ी आवश्यकता है, और यदि हम इन गायों को नहीं बचा सकेंगे, तो हमारा राष्ट्र भी नहीं बचेगा? मैं ने जो कुछ लिखा था, या सुझाव दिए थे, वे केवल गाय व अन्य दूध देने वाले सभी पशुओं की सही तरीके से रक्षा करने के लिए ही दिए थे। लगता है, इस असली बात को मेरे आलोचकों और धर्माधिकारियों ने इसलिए पीछे फेंक दिया है कि वे प्राचीन हिंदुओं के गौमांस खाने न खाने के प्रश्न को लेकर, 'गौ हत्या' का नारा लगा कर और हिंदुओं की भावना को उभार कर अपने राजनीतिक व अन्य स्वार्थों के लिए एक आंदोलन खड़ा कर सकें।

लेख के विरुद्ध पहली व सब से बड़ी आपत्ति यह है कि उस में वेदकालीन आर्यों को गौमांस भक्षी सिद्ध किया गया है। इस के प्रमाण में, मैं ने जो वेदमंत्र दिया है, आलोचकों ने कहा है कि उस मंत्र का अर्थ मेरे दिए गए अर्थ से भिन्न है। कुछ

आलोचकों ने यह भी कहा है कि वह केवल रूपक मात्र है और उस के आधार पर यह नहीं मानना चाहिए कि प्राचीन काल में सचमुच गौवध होता था।

सभी आलोचक सज्जनों ने प्रकारांतर से यह भी लिखा है कि गौमेध नामक यज्ञ में जो गौ नामक पशु की बलि दी जाती थी—वह केवल विदेशियों द्वारा फैलाया गया भ्रम है। एक सज्जन ने तो इसी आधार पर तर्क करते हुए लिखा है कि यदि गौमेध का अर्थ यह लिया जाए कि प्राचीन आर्य गौ की बलि दे कर उस का भक्षण करते थे, तब अश्वमेध और नरमेध से क्या यह अर्थ लिया जाए कि प्राचीन आर्य यज्ञ में घोड़े और मनुष्य की आहुति देते थे और उन का मांस खाते थे?

'गौपूजा' लेख लिखते समय मुझे यह किंचित मात्र भी आशा नहीं थी कि लेख के इस भाग पर आपत्ति की जाएगी और आज कोई पढ़ा लिखा व्यक्ति यह विचार प्रकट करने का साहस करेगा कि वैदिक यज्ञों में पशु हिंसा नहीं होती थी, बल्कि उन्हीं नामों से पुकारी जाने वाली वनस्पतियों की आहुति दी जाती थी।

कहा गया है कि विदेशी स्लेच्छों ने हमें हीन और बर्बर दिखाने के लिए इस प्रकार की धारणाओं का प्रचार किया है और मैं तथा सरिता संपादक हिंदुओं के हृदय को आघात पहुंचाने के लिए ही इन भ्रष्ट धारणाओं का प्रचार कर रहे हैं।

आलोचक मित्रों को यह सूचना पा कर शायद बड़ा आघात लगेगा कि वैदिक यज्ञों में पशु हिंसा होने का समर्थन हमारे

देश के कुछ ऐसे बड़ेबड़े विद्वानों ने किया है, जो विद्वता और योग्यता के कारण भारत, विशेषतः हिंदू जाति के गौरव माने हैं। इतिहास और वैदिक दर्शन तथा साहित्य संबंधी अपनी स्वतंत्रता एवं मौलिक शोधों से उन्होंने विदेशियों द्वारा भारतीय इतिहास के संबंध में फैलाई गई अनेक गलत बातों का ऐसा खंडन किया है कि स्वयं विदेशियों को उन की बात स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा।

लोकमान्य तिलक के विचार

इस संबंध में मैं सब से पहले लोकमान्य तिलक के एक भाषण के कुछ शब्दों को उद्धृत करूंगा, जिन से विदित होता है कि लोकमान्य कितनी स्पष्टता के साथ वैदिक यज्ञों में पशु हिंसा होने की बात स्वीकार करते थे। लोकमान्य ने कहा था : "अहिंसा परमो धर्म :- इस उदार सिद्धांत ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप मारी है। पूर्व काल में यज्ञ के प्रमाण 'मेघदूत' आदि अनेक ग्रंथों में मिलते हैं। परंतु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय जैन धर्म के हिस्से में है।" (सुबई समाचार' के 10 दिसंबर 1904 के अंक से उद्धृत। यह संपूर्ण भाषण पुस्तिका रूप में भी प्राप्य है।)

वैदिक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर भगवानदास ने अपने लेख 'शास्त्रवाद बनाम बुद्धिवाद' में लिखा है :

"यदि शास्त्र शब्द ही पकड़ा जाएगा, तो फिर अन्न और घी के ही यज्ञ से संतोष क्यों? अजमेध, महिषमेध, गौमेध, अश्वमेध नरमेध भी क्यों नहीं? सभी तो शास्त्रविहित, वेदविहित हैं। और आज भी सनातन धर्म के, वेदशास्त्र के श्रद्धालु हिंदू लोग काशी जैसे तीर्थस्थान में, दुर्गा मंदिर में अजमेध और पास ही विध्याचल में महिषमेध आए दिन करते ही हैं, यद्यपि वेदविहित आडंबर के बिना।"

यह लेख उन्होंने उस समय लिखा था जब एक ओर देश में अकाल पड़ रहा था और दूसरी ओर दिल्ली, काशी, प्रयाग

आदि स्थानों में शास्त्रों की आज्ञा के नाम पर अनेक यज्ञ रचाए जा रहे थे और उन में हजारों मन अनाज और घी फंका जा रहा था। डाक्टर भगवानदास ने उसी ओर संकेत करते हुए कहा कि यदि शास्त्रों के आधार पर ही चलना है तो अन्न और घी से ही क्या, घोड़ा, गाय, बकरा, भैंसा और मनुष्य की आहुति दिए जाने का विधान जिन यज्ञों में है, वे यज्ञ भी क्यों नहीं करते?

श्री जयचंद्र विद्यालंकार की प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' (प्रथम भाग) से कुछ शब्द देखिए। इस पुस्तक के पृष्ठ 251 (द्वितीय संस्करण) पर वेदकालीन आर्यों के आहारविहार की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है :

"आर्य लोग पूरे मांसाहारी थे। गाय को उस समय भी अध्व्या अर्थात् न मारने लायक कहने लगे थे, तो भी विवाह के समय या अतिथि के आने पर बैल अथवा बेहत् (बाँझ गाय) को मारने की प्रथा थी।"

श्री जयचंद्र की संपूर्ण शिक्षादीक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई है। आर्यों और वैदिक साहित्य के प्रति गौरवमय भावना तथा अनंत श्रद्धा उन की पुस्तकों की विशेषता है। आजकल वह हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधान हैं और विगत वर्षों से सम्मेलन द्वारा आयोजित अनेक इतिहास परिषदों का सभापतित्व कर चुके हैं। उन की यह पुस्तक, जिस से उपरोक्त अंश उद्धृत किया गया है, भारतीय इतिहास साहित्य में गर्व करने योग्य मानी जाती है, हिंदी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में स्वीकृत है। अपने इस कथन के प्रमाणस्वरूप अर्थात् वेदकालीन आर्यों को गौमांस भक्षी सिद्ध करने के लिए जयचंद्रजी ने वहीं फुटनोट में कुछ वेदमंत्रों और ब्राह्मण ग्रंथों के स्थलों की ओर संकेत किया है।

हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान लेखक श्री भगवतशरण उपाध्याय ने अपने ग्रंथ 'भारत का प्राचीन इतिहास' के पृष्ठ 32 पर लिखा है।

"ऋग्वेदकालीन आर्यों के आहार अन्न

और मांस दोनों ही थे... भेड़, बकरी का मांस अधिकता से खाया जाता था। मांस आर्य लोग अपने देवताओं की पूजा में भी व्यवहृत करते थे। यज्ञों में देवपूजन से अवशिष्ट मांस ऋत्विज और यजमान दोनों का ही भक्ष्य था।

अतिथिग्व

"उत्सव में और अतिथियों के स्वागत के अवसर पर भोजन के निमित्त गाय का बछड़ा मारा जाता था। इसी कारण 'अतिथिग्व' उस की संज्ञा हो गई थी। परंतु अपनी उपादेयता के कारण शीघ्र ही गाय की संज्ञा अछया हो गई। ऋषियों ने उस की स्तुति में गीत गाए और उस का वध निषिद्ध हो गया।"

आचार्य काका कालेलकर ने भी अपने एक लेख 'गौरक्षा' में लिखा है :

"बहुत प्राचीन काल में हिंदुस्तान में एक समय था जब गौवध निषिद्ध नहीं था। सब पशुओं की हिंसा होती थी।" (यह लेख नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद, से प्रकाशित पुस्तक 'गौसेवा' में संग्रहीत है। पुस्तक के लेखक महात्मा गांधी हैं।)

वेदवेदांगों के प्रसिद्ध ज्ञाता श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी ने, जो आजकल संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्यालय, प्राज्ञ पाठशाला, स्थानवाड़ी (सतारा), के मुख्य आचार्य हैं और संपूर्ण हिंदू धर्म शास्त्रों को 'धर्म कोश' के रूप में संपादन करने का जो विराट प्रयास महाराष्ट्र में प्रारंभ हुआ है, उस के मुख्य संपादक हैं, गौमेध और प्राचीन आर्यों द्वारा गोमांस भक्षण के विषय में लिखा है :

"उस समय की सामाजिक स्थिति ऐसी थी कि समाज के निर्वाह के लिए उपयोगी गौ आदि पशुओं की हत्या धर्म के नाम पर भक्षण के लिए की जाती थी। यह यज्ञार्थ होती थी।" (हिंदू धर्म की समीक्षा, हिंदी संस्करण, पृष्ठ 136)।

इसी पुस्तक के पृष्ठ 124 पर 'वैदिक आर्यों का श्रोतस्मार्त धर्म' शीर्षक से 'शास्त्रीजी ने लिखा है :

"उन में गौमेध, अश्वमेध, अजमेध आदि पशु यज्ञों का धर्म था।"

श्री कन्हैयालाल मंशी (तत्कालीन गवर्नर, उत्तरप्रदेश) ने 'भगवान् परशुराम' और 'लोमहर्षिणी' की भूमिका में यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि प्राचीन काल में नरमेध यज्ञ होता था, जिस में मनुष्य की बलि दी जाती थी। वह एतरेय ब्राह्मण में वर्णित 'शूनः' शेष के प्रकरण को रूपक नहीं मानते, बल्कि ऋग्वेद काल में घटित एक वास्तविक घटना मानते हैं। उन्होंने बड़ी ही गंभीरता के साथ चित्रित किया है कि अनेक ऋषि 'शूनः' शेष नामक ऋषिपुत्र की बलि दे कर उस के मांस की आहुति देना चाहते थे, किंतु विश्वामित्र ने इस में बाधा डाल दी।

इस के अलावा मैं पाठकों से प्रार्थना करूंगा कि राहुलजी की 'मानव समाज' व 'बोल्गा से गंगा', डाक्टर अंबेडकर की 'शूद्रों की खोज' व 'अछूत क्यों और कैसे', रजनीकांत शास्त्री की 'हिंदू जाति का उत्थान और पतन' तथा 'मानस मीमांसा' धर्मानंद कौसांबी की 'भारतीय संस्कृति और अहिंसा' तथा डांगे की 'भारत' पुस्तकें पढ़ने की कृपा करें।

इन पुस्तकों के अध्ययन से पाठक इतना तो समझ ही लेंगे कि गौपूजा लेख के प्रकाशन के विरुद्ध जो प्रचार किया जा रहा है, उस के भीतर अवश्य ही कोई दूसरी प्रेरणा है, अन्यथा उपरोक्त ग्रंथों में ऐसे-ऐसे तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है, जिस से हमें अपने प्राचीन ऋषिमुनियों के संबंध में एकदूसरे ही दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इन पुस्तकों में से अधिकांश के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, इसलिए ये पुस्तकें लेख के विरोध में आंदोलन करने वाले विद्वानों और संपादकों की दृष्टि में न आई हों, इस पर कौन विश्वास करेगा?

सुना है सरिता के विरुद्ध अदालती काररवाई होने जा रही है और इस के कुछ मित्रों ने बड़े जोशखरोश के साथ चंदा भी

इकट्ठा करना शुरू कर दिया है। यह बात इस प्रश्न का उत्तर भी है कि उन पुस्तकों के विरुद्ध कोई आंदोलन क्यों नहीं खड़ा किया गया और सरिता पर ही क्यों लोग कमर कसे हुए हैं। साफ बात यह है कि जिस प्रकार 'अमृतपत्रिका' के संबंध में धर्मांध मुसलमानों ने जो उच्छृंखलता दिखाई है और एक छोटी सी घटना पर मुसलिम जनता को भड़का कर अनेक मुसलमान नेताओं ने अपनी जेबें भरी हैं, उसी तरह इस लेख के विरोधी महानुभाव भी अपनी जेबें भर लेने का अवसर खोज रहे हैं। कुछ लोगों ने साफसाफ इसी उदाहरण को उपस्थित कर के हिंदू जनता को भड़काने की चेष्टा की है।

अब मैं मूल ग्रंथों में से भी थोड़े उद्धरण देना चाहूंगा। इन उद्धरणों से पाठक यह भी समझ सकेंगे कि प्राचीन आर्यों में गौमेध और गौमांस भक्षण प्रथा प्रचलित होने के तथ्य को स्वीकार करने पर उपरोक्त विद्वान क्यों विवश हुए। इस विषय में वेदों में अनेक मंत्र आते हैं, किंतु मंत्रों के अर्थ भिन्नभिन्न किए जाते हैं।

तर्कहीन युक्ति

वेदों पर सायणाचार्य के भाष्य को प्रायः सनातनी जगत मानता है। सायणाचार्य ने मंत्रों के जो अर्थ दिए हैं वे बिना शक यह प्रमाणित करते हैं कि गौमेध में गाय नामक पशु की बलि दी जाती थी। आर्यों का देवता इंद्र बैलों को पकापका कर खाता था। सनातन धर्मी बंधुओं का कहना है कि सायणाचार्य का भाष्य तो ठीक है, किंतु उस समय हमारे यज्ञकर्ता ऐसी अलौकिक शक्ति रखते थे कि वे यज्ञ में होम किए गए पशुओं को पुनः जीवित कर देते थे।

महर्षि दयानंद को यह तर्क ठीक नहीं जान पड़ा, दूसरी ओर उन की श्रद्धा यह भी सहन नहीं कर सकती थी कि प्राचीन आर्य गाएँ, घोड़ा, मनुष्य की बलि देते थे। इसलिए उन्होंने और उन के बाद कुछ आर्यसमाजी विद्वानों ने वेदमंत्रों के अर्थ

दूसरी ही पद्धति से करने आरंभ किए। किंतु अन्य धार्मिक ग्रंथ यहां तक कि ब्राह्मण ग्रंथ भी जिन में वैदिक धर्मकांडों का विस्तार है और इसी लिए जिन को वेदांग ही माना जाता है, महर्षि दयानंद की शैली से किए गए वेदार्थों के विरोध में पड़ते हैं।

'वाल्मीकीय रामायण', 'महाभारत' इत्यादि ग्रंथ और 'मेघदूत' तथा 'उत्तर रामचरित' जैसे काव्य और नाटक भी ऐसे तथ्यों को प्रकट करते हैं जो सायणाचार्य के भाष्य से तो मेल खाते हैं, किंतु महर्षि दयानंद की शैली से किए गए भाष्य से नहीं।

तब आर्य समाजी बंधुओं ने यह कहना शुरू किया कि यह सब स्थल प्रक्षिप्त यानी बाद में मिला दिए गए हैं, अतः उन को हम प्रामाणिक नहीं मानते। किंतु निष्पक्ष विद्वानों को यह तर्क प्रभावित नहीं कर सकता। यहां तक कि आर्य समाज के कठोर नियंत्रण में संचालित होने वाले गुरुकुलों के विद्यार्थियों के मन में भी यह तर्क हीन युक्ति नहीं बैठ सकी।

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक और प्रसिद्ध पत्रकार श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने इसी प्रकार की एक घटना का वर्णन करते हुए अपनी पुस्तक 'राष्ट्रधर्म' (प्रथम संस्करण, पृष्ठ 13-14) में लिखा है :

"गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी, के महाविद्यालय विभाग की तीसरी कक्षा की बात है। वैदिक साहित्य की पढ़ाई चल रही थी। गुरुजी 'शतपथ ब्राह्मण' में से गौमेध यज्ञ का प्रकरण पढ़ा रहे थे। उन्होंने अपने विचार के अनुसार गौमेध यज्ञ की व्याख्या करते हुए बताया कि किस प्रकार गाय को स्तूप के साथ बांध कर यज्ञ में उस की बलि दी जाए। गौमेध की यह व्याख्या समाप्त होते न होते एक विद्यार्थी ने गुरुजी से कुछ शंका प्रकट करने की इच्छा प्रकट की। गुरुजी ने उस को प्रसन्नतापूर्वक शंका प्रकट करने के लिए कहा। विद्यार्थी ने विनीत भाव से पूछा कि यदि गौमेध यज्ञ की इस व्याख्या को ठीक मान लिया जाए, तो ईद की कुरबानी और इस गौमेध यज्ञ में क्या अंतर

है? गुरुजी ने लगभग एक घंटे तक संस्कृत में व्याख्यान दिया और शंका का समाधान करने का प्रयत्न किया, पर शंका नहीं मिटी. विद्यार्थी ने जब फिर शंका प्रकट की, तो गुरुजी इतने आवेश में आ गए कि उन्होंने विद्यार्थी को नास्तिक इत्यादि कह कर उस शंका को दबा देना चाहा."

वेदों में गौमांस भक्षण

उपरोक्त घटना उद्धृत करने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि पाठक समझ सकें कि श्री सत्यदेव विद्यालंकार जैसे गुरुकुल में पठित-पाठित विद्वान भी क्यों यह मानने लगे कि वेदों में गौमांस भक्षण है और गौमेध में गाय नामक पशु की बलि दी जाती थी. वास्तव में आर्य समाज के अधिकांश विद्वान भी कदाचित इस संबंध में भीतर ही भीतर ऐसा ही विश्वास रखते थे और गुरुकुलों में भी इसी के अनुसार पठनपाठन होता था.

गौमेध यज्ञ में गाय नामक पशु नहीं, बल्कि इस नाम की कोई औषधि डाली जाती होगी और प्राचीन आर्य गौमांस नहीं खाते थे, इस पर यह विद्वान कैसे विश्वास कर लेते जब कि 'गोपथ ब्राह्मण' में यह भी बताया गया है कि बलि पशु के किस भाग को कौन पाने का अधिकारी है. इस बंटवारे के अनुसार जीभ, गला, कंधा, नितंब, टांग, पुरोहित पाते थे. यजमान पीठ का भाग लेता था और उस की स्त्री को पेड़ के भाग से संतोष करना पड़ता था. मूल संस्कृत में इस प्रकार है :

"अथातः सवनीयस्य पशोर्विभागं-
व्याख्यास्यमः उद्धृत्यावदानि हनु सजिह्वे
प्रस्तोतुः कंठः सककुदः प्रतिहर्तुः, श्येनपक्ष
उद्गातु दक्षिणं पार्श्वं सांसमध्वर्यो....."
इत्यादि. (गोपथ ब्राह्मण 3.18)

'एतरेय ब्राह्मण' में भी इसी प्रकार का विभाजन बताया गया है.

'शतपथ ब्राह्मण' (3.1.2.21) में एक विवाद दिया गया है कि पुरोहित को बैल का मांस खाना चाहिए या गाय का? अंत में

परिणाम निकाला गया कि दोनों का ही मांस नहीं खाना चाहिए. परंतु याज्ञवल्क्य कहते हैं कि यदि वह मांस नरम हो तो खा सकते हैं.

'बृहदण्यक उपनिषद्' (6.4.18) में कहा गया है कि यदि कोई चाहता है कि उस का पुत्र विद्वान, विजयी और सर्व वेदों का ज्ञाता हो, तो वह बैल का मांस चावल के साथ पका कर घी डाल कर खाए.

उपरोक्त तीनों उद्धरण में ने प्रसिद्ध लेखक आचार्य चतुर न शास्त्री की पुस्तक 'धर्म के नाम पर' में से लिए हैं. प्राचीन आर्यों को गौमांस भक्षी सिद्ध करने के लिए आचार्यजी ने और भी अकाट्य प्रमाण दिए हैं.

'वसिष्ठ स्मृति', अध्याय 4, में कहा गया है :

"अथापि ब्राह्मणाय व राजन्याय वा अभ्यागताय वा महोक्षं वा महाजं वा पचेत्. एवमस्यातिथ्यं कुर्वन्तीति."

अर्थ : और अपने यहां यदि ब्राह्मण अथवा राजा अतिथि आए तो उस के लिए एक बड़ा बैल या बड़ा बकरा पकाना चाहिए. उस अतिथि का सत्कार इसी प्रकार करते हैं.

'शब्दकल्पदुम' में गौमेध की यह व्याख्या दी गई है :

"यजविशेषः अत्र स्त्रीगोपशुः मंत्रेषु स्त्रीलिंग पाठत्. तस्य लक्षणम्-सप्तशफत्व-नवशफत्व - भग्नशृंगत्व - काणत्व-छिन्न-कर्णत्वादि दोषराहित्यम्. तस्य प्रयोगः सर्वोऽपिछागपशुवत्. यजमानस्य स्वर्गः फलम्, गोश्च गोलोकप्राप्तिः तस्य च कलौनिषेधो यथा- 'अश्वालम्भं ग्वालम्भं संन्यासं फलपैतुकम्. देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौपंच विवर्जयेत्' इति आपस्तम्भ कल्पसूत्र पुराणे."

अर्थ : यह एक यज विशेष है. यहां पर 'गौ' शब्द से स्त्री गो पशु अर्थात् गाय, न कि बैल, सांड या बाछा, अभिप्रेत है, क्योंकि मंत्रों में स्त्रीलिंग का पाठ है. उस गाय का यह लक्षण होना चाहिए कि वह सात

खुरवाली, नौ खुर वाली, टूटे सींग वाली, कानी या कनकटी न हो. उस में ये दोष न होने चाहिए. उस का संपूर्ण छाग (बकरा) की ही भांति होना चाहिए. गौमेध यज्ञ का कलिकाल में निषेध है, जैसे अश्वमेध, गौमेध, संन्यास, मांस द्वारा पितरों के श्राद्ध तथा देवर से पुत्रोत्पादन - ये पांच काम कलियुग में वर्जित हैं. यह आपस्तम्भ कल्पसूत्र पुराण का वचन है.

बृहन्नारदीय संहिता में भी कहा गया है :

"समुद्रयात्रा-स्वीकारः, कमंडलु-विधारणम् द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमः, तथा देवरेण सुतोत्पत्तिः, मधुपर्कं पशोर्वधः मांसोदनं तथा श्राद्धं, वानप्रस्थाश्रमः, तथा दत्तायाश्चैव कन्यायाः पुनर्दानं परस्यच, दीर्घकालं ब्रह्मचर्यम्, नरमेधाश्वमेधकौ, महाप्रस्थानगमनम्, गोमेधं च मखं तथा, इमान धर्मान् कलियुगेव ज्याना हुः मतीषिणः"

अर्थ : समुद्र यात्रा, संन्यास ग्रहण, द्विजातियों का असवर्ण कन्याओं से विवाह, देवर से सुतोत्पादन, मधुपर्क में पशु का वध, श्राद्ध में मांस का पिंड दान, वानप्रस्थाश्रम, जो कन्या एक बार दान कर दी गई पुनः उस का किसी अन्य वर को दान, दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना, नरमेध तथा अश्वमेध, महाप्रस्थान गमन (असाध्य रोग होने पर शास्त्रोक्त विधि से आत्महत्या) और गौमेध-इन धर्मों को कलियुग में वर्जित किया गया है.

स्पष्ट है कि उपरोक्त शास्त्रों की रचना होने के समय तक गौमेध तथा उपरोक्त कार्यों को निंदनीय माना जाने लगा था. यही मैं ने अपने लेख में भी लिखा था कि गाय की उपयोगिता जैसे ही आर्थिक दृष्टि से बढ़ती गई, गौमेध का विरोध होने लगा. इस के पश्चात् तो यज्ञों में पशुहिंसा का ही विरोध हुआ. इसी लिए उपर्युक्त शास्त्रकार कलियुग में गौमेध की आज्ञा नहीं देते. किंतु उपरोक्त निषेध से इतना तो प्रमाणित होता ही है कि प्राचीन काल में

गौमेध प्रचलित था और उस में गौ पशु की बलि दी जाती थी, अन्यथा उस का निषेध ही क्यों किया जाता?

'महाभारत', अध्याय 208, वन पर्व, श्लोक 8 तथा 9 इस प्रकार हैं.

"राज्ञो महानसे पूर्व रंतिदेवस्य वै द्विज, अहन्यहीनवध्येते द्विसहस्रैर्गवां तथा. समांसं ददतोऽहं रंतिदेवस्य नित्यशः, अतुलाकीर्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम."

अर्थ : राजा रंतिदेव की पाकशाला में प्रतिदिन 2000 गाएँ कटती थीं. मांस के साथ अन्न का दान करतेकरते रंतिदेव की कीर्ति अद्वितीय हो गई.

इसी बात को फिर दोबारा द्रोण पर्व, अध्याय 67, श्लोक 16, में इस प्रकार कहा गया है :

"सांस्कृतं रंतिदेवस्य यां रात्रिमतिथिवसेत्, आलम्प्यत तदा गावः सहस्राण्येकविंशति."

अर्थ : संस्कृति के पुत्र राजा रंतिदेव के घर पर जिस रात में अतिथियों ने निवास किया, उस रात इक्कीस हजार गाएँ मारी गईं.

'महाभारत' के इसी पर्व और अध्याय के पांचवें श्लोक में बताया गया है कि राजा रंतिदेव ने गौमेध यज्ञ में इतनी गायों का वध किया कि उन के रक्त, मांस, मज्जा से एक चर्मण्वती नामक नदी ही बह निकली : "नदी महानसाद्यस्य प्रवृत्ता चर्मराशितः, तस्माच्चर्मण्वती पूर्वमग्निहोत्रेऽभवत्पुरा."

महाकवि कालिदास ने अपने 'मेघदूत' काव्य, पूर्वार्द्ध, श्लोक 45, में भी इसी प्रकार चर्मण्वती नदी का वर्णन किया है और फिर मल्लीनाथ कृत 'मेघदूत' की टीका में भी राजा रंतिदेव द्वारा किए गए गौमेध से चर्मण्वती नदी के बह निकलने का वर्णन है.

यज्ञों में पशुहिंसा प्रामाणिक

लेख में लोकमान्य तिलक के भाषण से उद्धृत अंश (पृष्ठ 18) में यज्ञों में पशु हिंसा सिद्ध करने वाले प्रमाणों को स्वीकार करते समय 'मेघदूत' का इसीलिए उल्लेख किया है कि वह भी इसे प्रामाणिक मानते थे.

भिन्नभिन्न काव्य ग्रंथों में जब एक घटना का एक प्रकार से ही वर्णन मिलता है तब कोई विद्वान कैसे कह दे कि यह तो बाद में लगा दिए गए हैं?

'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' अर्थात् 'उत्तर रामचरित लिखने में भवभूति ने विशेष योग्यता दिखाई है'—इस प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार महाकवि भवभूति की सर्वोत्कृष्ट कृति 'उत्तर रामचरित' के चतुर्थ अंक में महाकवि वसिष्ठ को वाल्मीकि आश्रम में महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रदत्त गौवत्सरी (गाय की बछिया) के मांस से युक्त मधुपर्क को ग्रहण करते हुए दिखाया गया है। इस ग्रंथ का उल्लेख मैं ने अपने लेख 'गौपूजा' में भी किया है, जिस पर दिल्ली के एक उर्दू दैनिक ने मुझे निहायत लजीज गालियां देते हुए पूछा है कि जब मैं यह कह चुका हूँ कि बौद्धकाल में गौमेध बंद हो गया था, तब भवभूति, जो बुद्ध के कई सौ वर्ष बाद हुआ, अपने नाटक में यह कैसे लिख जाता कि वसिष्ठ ने गौवत्सरी का मांस ग्रहण किया था?

यह सवाल ठीक ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि जब ब्रिटिश सरकार सन 1845 के एक्ट 21 द्वारा नरमेध यज्ञ को दंडनीय घोषित कर चुकी थी, तब 1948 में प्रकाशित अपने उपन्यास 'लोमहर्षिणी' में कन्हैयालाल मुंशी ने यह कैसे लिख दिया कि ऋग्वेद कालीन आर्य नरमेध करते थे!

वसिष्ठ ने एक स्थान पर कहा है :

"श्वाविच्छलक शशकच्छप गोधाः पंचनखा नाभक्ष्या अनुष्टाः पशुनामन्यतो दन्तश्च मत्स्यानां वा वहगवय शिशुमार नक्र कुलीरा अविकृतरूपाः सर्पशीर्षाश्च गौर गवय शालभाश्चानुदिष्टास्तथा धेन्वन्डवाहौमेधौवाजसनेयने खड्गेतुविवर्तित ग्राम्यशूकरे च" इत्यादि।

अर्थ : साही, सेई, खरगोश, कछुआ और गोह, ये पांच नख वाले जीव अभक्ष्य नहीं हैं। ऊंट के अतिरिक्त अन्य पशु भी जो एक तरफ दांत वाले हैं, अभक्ष्य नहीं हैं। मत्स्यों में दरियाई नीलगाय, संगमाही, नक्र

केकड़ा तथा वे जिन का सिर सांप के समान नहीं है, अभक्ष्य नहीं हैं। वाजसनेय के मत में गाय और बैल भी पवित्र अर्थात् भक्ष्य हैं। गैंडे और ग्रामशूकर के संबंध में ऋषिगण विवाद करते हैं अर्थात् कोई उन्हें अभक्ष्य और कोई उन्हें भक्ष्य बताता है।

इसी प्रकार के और भी सैंकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं। 'अश्वालायन गृह्यसूत्र' अध्याय 4, खंड 10, में शूलगव नामक यज्ञ का वर्णन इस प्रकार किया गया है :

"शूलगव शरत काल अथवा वसंत काल में करना चाहिए। वह आर्द्र नक्षत्र में करना चाहिए। अपनी गौशाला का सब से अच्छा बैल छांट लेना चाहिए। वह पृषद् वर्ण होना चाहिए। कोई चित्र वर्ण वाला भी कहते हैं। ऊंचे स्कंद वाला काला बैल हो तो उत्तम ही है। उस का चावल या जौ का पानी से अभिषेक करना चाहिए। वह इस प्रकार : 'रुद्राय महादेवाय जुष्टो वर्धस्व।' अनंतर उसे मार कर आहुतियां दें। वह इस प्रकार : 'हराय कृपाय शर्वाय शिवाय भवाय महादेवायोंप्राय पशुपतये रुद्राय शंकराय शानायाऽ शनये स्वाहा।' उस की पूंछ और चमड़ा, सिर और पैर अग्नि में डालें। किंतु शांबव्य आचार्य कहते हैं कि चमड़े का उपभोग करें।"

वैवाहिक पद्धति में भी ऐसे अनेक स्थल हैं, जिन से गौवध प्रमाणित होता है ग्रंथ के ग्रंथ ऐसे उद्धरणों से तैयार किए जा सकते हैं, किंतु मैं इस प्रकार के बहुत से उद्धरण दे कर पाठकों के धैर्य की परीक्षा नहीं लेना चाहता।

असंगत तर्क

एक उर्दू दैनिक के संपादक महोदय ने मांग की है कि ऐसी तमाम किताबें ज्वल कर ली जाएं जो साबित करती हैं कि प्राचीन आर्य गौमांस भक्षी थे। लेकिन वह यह सोचें कि इस तरह की तमाम किताबों की ज्वती के अर्थ क्या होते हैं? सायणाचार्य तथा उस पद्धति पर किए गए अनेक वेद

भाष्य, अनेक ब्राह्मण ग्रंथ, अनेक संहिताएं, अनेक उपनिषद्, महाभारत, मेघदूत, उत्तर रामचरित नाटक, अनेक आचार सूत्र और फिर लोकमान्य तिलक, डाक्टर भगवान-दास, श्री जयचंद्र विद्यालंकार, श्री कन्हैयालाल मुंशी की रचनाओं को ज्वल करना ही तो पाठकगण इस मांग के आधार पर ही 'गौपूजा' लेख के विरोधियों की मानसिक स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं।

लेख का वह अंश भी आपत्तिजनक माना गया है जिस में यह सुझाव है कि गौवंश की अभिवृद्धि के लिए दुर्बल, अपंग, निठल्ली व बेकार गायों को नष्ट कर दिया जाए।

इस सुझाव के विरोध में प्रायः सभी ने यह तर्क उपस्थित किया है कि फिर बेकार, अपंग, दुर्बल और रोगी मनुष्यों को भी क्यों न समाप्त कर दिया जाए? बुद्ध मातापिता को भी क्यों न कसाईखाने भेज दिया जाए?

मैं अपने इन मित्रों से पूछना चाहता हूँ कि क्या उन्होंने किसी भी ऐसे व्यक्ति को आज तक देखा है जो अपने मातापिता के गले में रस्सी डाल कर उन्हें खूंटें से बांध कर रखता हो ताकि वे किसी दूसरे के घर में न घुस जाएं, उन्हें बाजार में खरीदताबेचता हो, उन का दूध निकाल कर स्वयं पी जाता हो या बाजार में बेच कर मुनाफा कमाता हो, और उन के नर बच्चों को हल व ठेलों में बेरहमी से जोतता हो या गरम लोहे से दाग कर बाजारों में खला छोड़ देता हो ताकि उन्हें जो मादा मिले, उस पर बलात्कार करने लगे? स्पष्ट है कि उन्होंने एक भी आदमी नहीं देखा होगा, लेकिन गाय के साथ यही बरताव वे खुद भी करते होंगे, क्यों? इसलिए कि गाय और आदमी में अंतर है।

गाय के बछड़े को हम इस तरह से बांधते हैं कि वह गाय तक न पहुंच सके और वह गाय का दूध न पी जाए जो उस का जन्मसिद्ध अधिकार है। गाय कभीकभी इस पर नाराज हो कर दूध चढ़ा जाती है तो हम

तरहतरह से उसे डरातेधमकाते हैं। क्या ऐसा ही बरताव हम किसी इनसान के साथ करते हैं? यदि नहीं, तो जानवर और इनसान की बराबरी का तर्क उपस्थित करने में क्या तत्त्व हैं?

फिर यह सवाल गाय के लिए ही क्यों उठता है, दूसरे प्राणियों के लिए क्यों नहीं? आज सरकार अन्न की कमी को पूरा करने के लिए मछलियों की पैदावार बढ़ा रही है। अन्न की कमी की वजह से इनसान दूसरे इनसान को तो नहीं खा सकता, फिर मछलियों को कैसे खा सकता है? इस तर्क के सहारे इन आलोचकों को चाहिए कि वे मछली पालन के विरुद्ध भी सत्याग्रह करें।

पूजा के लिए और खाने के लिए आज असंख्य बकरे, बकरी, भैंस, भैंसे, मुरगे इत्यादि काटे जाते हैं। अगर दूध देने की ही दलील हो, तो इन में से अनेक दूध भी देते हैं। लेकिन उन की हत्या के विरुद्ध कोई आंदोलन नहीं किया गया। फिर गाय के नाम पर ही मनुष्य और पशु को एक स्तर पर लाने की, उस के साथ एक सा व्यवहार करने की उदारता और महानता क्यों उमड़ने लगती है?

गौपूजा के नाम पर ठगी

केवल इसलिए कि गौपूजा और गौरक्षा के नाम पर एक पूरा वर्ग अंधश्रद्धालुओं को ठग कर अपना पेट पालता है। अन्यथा अपनी इस गौमाता के साथ वे स्वयं कैसा व्यवहार करते हैं, इस का वीभत्स रूप तीर्थों में देखिए, जहां एक मृतप्राय बछिया को गंगाजल में खड़ा किए पूज्य पंडितजी पांच आने, दस आने, सवा रुपया ले कर गौदान का फल बेचते हैं। वह बछिया कुछ ही दिनों में बीमार रह कर मर जाती है।

मैं इस कथाकथित गौरक्षकों व गौभक्तों से पूछता हूँ कि आज तक इस के विरुद्ध कोई आंदोलन क्यों नहीं किया गया? फंका प्रथा के विरुद्ध किसी ने प्रदर्शन या सत्याग्रह क्यों नहीं किया? गायों की

क्रूरतापूर्ण हत्या के जो रूप और तरीके मैं ने अपने पहले लेख में गिनाए हैं, उन को दूर करने का उपाय क्यों नहीं किया गया? जो लोग अपनी पालतू गायों का दूध निकाल कर उन को दिन भर इधर उधर भंड मारने, जहांतहां पिटने तथा भक्ष्यअभक्ष्य खाने के लिए छोड़ देते हैं, उस के बारे में कुछ क्यों नहीं किया गया?

दलील दी जाती है कि हिंदू जाति सदियों से गाय को पूज्य मानती आई है, इसलिए ऐसे सुझाव नहीं दिए जाने चाहिए, क्योंकि इस से हिंदू जाति के हृदय को आघात लगता है, उस की भावनाओं को ठेस पहुंचती है।

मैं पूछता हूं कि जब स्त्री शिक्षा का प्रश्न पहलेपहल उठाया गया था, तब हिंदू जाति के हृदय को क्या कुछ कम आघात लगा था?

बंबई प्रांत में पहली कन्या पाठशाला खोलने वाले महात्मा जोतिबा फुले को उन के इस 'धर्म विरोधी कार्य' के अपराध में उन के पिता ने भी घर से निकाल दिया था। उन की पत्नी पार्वतीबाई जब लड़कियों को पढ़ाने पाठशाला में जाती थीं, तो आतेजाते समय उन्हें धर्मप्रेमी जनता के हाथों पत्थर खाने पड़ते थे।

सती प्रथा बंद किए जाने के विरोध में तो तूफान ही खड़ा कर दिया गया था। और आज भी ऐसे लोग हैं जो सती प्रथा को बंद कराने वाले स्वर्गीय राजा राममोहन राय को इसी अपराध के कारण हिंदू मानने के लिए तैयार नहीं।

'शारदा बिल' उपस्थित कर के जब बालविवाह रोका गया था, तब क्या बेचारे हिंदू धर्म के प्राण गले तक नहीं आ गए थे? गांधीजी के अछूतोंद्वारा आंदोलन के विरोध में जो बड़ेबड़े प्रदर्शन किए गए थे, और उन पर लाठियों की वर्षा की गई थी, तथा उन पर प्राणघातक बम फेंका गया था, यह सब भी तो एक भीषण संकट से हिंदू जाति को बचाने के लिए ही किया गया था।

अंतरजातीय विवाह, मंदिर प्रवेश,

एक पत्नी के रहते दूसरे विवाह का निषेध, विधवाविवाह आदि तो आज भी हिंदू के लिए विनाशकारी माने जाते हैं। तब क्या हमारा अपना भी यही दृष्टिकोण हो जाना चाहिए?

कहा जाएगा कि छुआछूत, बालविवाह आदि के विरोध में फिर भी एक लोकमत तैयार हो चुका है, किंतु गायों के संबंध में ऐसा सुझाव सुनने के लिए तो कोई भी तैयार नहीं है।

मेरा उत्तर है कि क्या छुआछूत, बालविवाह इत्यादि के विरोधियों की संख्या प्रारंभ में उंगलियों पर गिने जाने लायक नहीं थी? और क्या उन को म्लेच्छ, धर्मभ्रष्ट, हिंदू जाति का शत्रु इत्यादि की उपाधियां नहीं दी गई थीं?

इस के अतिरिक्त यह भी एक भ्रम है कि गायों के संबंध में ऐसा सुझाव सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। मैं ने जो बूढ़ों, अपंग, दुर्बल गायों को नष्ट करने का सुझाव दिया है, वह मेरा मौलिक सुझाव नहीं है। यही सुझाव अब तक अनेक प्रसिद्ध हिंदू अर्थशास्त्री दे चुके हैं।

श्री राधाकमल मुखर्जी के लेखांश को तो, जिस में स्पष्टतः उन्होंने यही सुझाव दिया है, मैं ने अपने लेख 'गौपूजा' में उद्धृत ही किया है। पाठकों से मेरी यही प्रार्थना है कि वे मुखर्जी की 'फूड प्लानिंग फार फोर हंडरेड मिलियंस' पुस्तक पढ़ने की कृपा करें।

बेकार गायों का नशा

बेकार गायों को नष्ट करने के सुझाव पर उत्तेजित होने वाले महानुभावों को तो ज्ञात है ही कि वृक्ष भी हमारे धर्म शास्त्रों के अनुसार पूज्य हैं और उन को नष्ट करना, उखाड़ना पाप है : किंतु हम अपने बाग के निर्बल, बेकार वृक्षों को इसलिए नष्ट कर देते हैं कि उपयोगी वृक्ष जीवित रह सकें। यदि माली निराई करना बंद कर दे यानी घास की अथवा रोगी, फलहीन वृक्ष की काटछांट न करे, तो क्या उस बाग के शेष वृक्ष जीवित रह सकेंगे? गाय के संबंध में

भी हमें इसी दृष्टिकोण को अपनाना होगा।

प्रश्न हो सकता है कि यदि वृद्ध, अपंग, दुर्बल गायों की रक्षा करते हुए भी गौवंश की अभिवृद्धि की जा सके, तो बेकार गायों को नष्ट करने पर ही क्यों जोर दिया जाए?

इस का उत्तर यही है कि क्या ऐसा होना संभव है? हमारे पास क्या इतना चारा और गल्ला है कि हम अपने स्वस्थ पशुओं का भी पेट भर सकें? हम करोड़ों रुपए का अन्न बाहर से मंगाते हैं, फिर भी देश के अनेक भागों में अकाल पड़ा रहता है और भूखमरी से मृत्यु होती रहती है। ऐसी स्थिति में क्या बेकार पशुओं को हम खिला सकते हैं? कहा जाएगा कि गाय हमारे लिए पूज्य है, अतः हम भूखों मर लेंगे, किंतु अपने हिस्से का खाद्य पदार्थ गाय को खिला कर उस की प्राणरक्षा करेंगे।

किंतु हाल ही में जब हिसार में, जो हमारे देश में गौवंश की उत्तम नस्ल के लिए प्रसिद्ध है, चारे की कमी के कारण हजारों गाएं मर गईं तब वहां कितने गौभक्त अपने हिस्से का खाद्य पदार्थ ले कर गायों को खिलाने पहुंचे थे?

हमारा देश आज अन्नोत्पादन बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील है। अन्न के स्थान पर यदि हम चारे का उत्पादन बढ़ाने लगे, तो हमारे देश की कितनी भयंकर स्थिति हो जाएगी, इस का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। आज तो प्रश्न यह है कि हमें बेकार पशु जीवित रखने हैं या मनुष्य?

बेकार गायों की रक्षा करते हुए भी गौवंश की अभिवृद्धि करने के गांधीजी के प्रयास में सब से बड़ी बाधा यह आज की अंधी गौभक्ति ही थी। गांधीजी कहते थे कि जो गाय निठल्ली है, दूध नहीं देती, उस से काम लेना चाहिए। उसे हल या गाड़ी में जोतना चाहिए, उस पर बोझा डोना चाहिए। मृत गाय के मांस, मज्जा, हड्डी, चमड़े इत्यादि का पुरापुरा उपयोग होना चाहिए। तभी गाय बेचगी।

गौभक्तों की ओर से इस का विरोध होता था। हमारी मां बूढ़ी हो जाए, बांझ हो जाए तो क्या उसे हल में जोतेंगे? हमारे

मांबाप मर जाएं, तो क्या उन के शव को चीरफाड़ कर हम उन की कुगति करेंगे? ये इन गौभक्तों के तर्क थे। अभी कुछ दिन पूर्व स्वर्गीय किशोरलालजी मश्रवाला ने बेकार गायों से काम लेने का सुझाव दिया था, तो इस पर भी गौभक्तों ने काफी होहल्ला मचाया था।

अतः गाय को मां या देवता समझने का अंधविश्वास जब तक समाप्त नहीं हो जाता तब तक तो गौवंश की अभिवृद्धि असंभव ही है।

अपने लेख 'गौपूजा' में मैं ने पूछा था कि संसार में एकमात्र गौपूजक हम हैं और संसार में सब से अधिक गाएं हमारे यहां हैं, फिर दूध घी की इतनी तंगी क्यों है? मुझे खेद है कि मेरे इस प्रश्न का उत्तर मेरे आलोचकों में से किसी ने नहीं दिया। किसी ने यह भी नहीं बताया कि गौरक्षा किस प्रकार की जानी चाहिए और बेकार गायों को जीवित रखते हुए भी हम गौवंश को किस प्रकार पुष्ट बना सकते हैं? मेरे लेख के उत्तर में केवल गालियां ही दी गई हैं और उन से निश्चय ही मेरा मन परिवर्तन नहीं हो सका।

विरोध मुसलमानों को करना चाहिए था

कहा गया है कि 'गौपूजा' लेख इसलिए लिखा और प्रकाशित किया गया है, जिस से केंद्रीय सरकार का शिक्षा विभाग और मौलाना आजाद प्रसन्न हों, तथा ऐसे ही लेखों को प्रकाशित किए जाने के कारण 'सरिता' सरकार द्वारा पुस्तकालयों और शिक्षालयों के लिए स्वीकृत है।

लेख के विरोधियों का यह कथन भी साबित करता है कि उन की असली नीयत क्या है। यह बात तो साधारण समझदार व्यक्ति भी जानता है कि पुस्तकालयों तथा शिक्षालयों के लिए प्रांतीय सरकारें किसी पत्र को स्वीकृत करती हैं और केंद्रीय सरकार का इस से कोई संबंध नहीं है। फिर भी यह सोचना चाहिए कि क्या उपरोक्त सभी विद्वानों ने वैदिक यज्ञों में पशुहिंसा होने या प्राचीन आर्यों द्वारा गौमांस भक्षण को केवल इसी लिए

ऐतिहासिक सत्य मान लिया था क्योंकि उन को इलहाम हो गया था कि वर्षों बाद मौलाना आजाद भारत के शिक्षा मंत्री बनेंगे और उन को प्रसन्न कर के वे कुछ अर्थलाभ कर सकेंगे?

गौवंश की अभिवृद्धि

इस के अलावा लेख के आलोचकों को यह भी सोचना चाहिए था कि लेख में गौवंश की अभिवृद्धि के लिए पहला सुझाव यह है कि 'स्वस्थ और दुधारू जानवरों का वध, चाहे वह गाय हो या भैंस अथवा कोई अन्य दुग्धोपयोगी जीव, दंडनीय ठहरा दिया जाए।' मुसलमान जो साल में एक बार पशु की कुरबानी करना अपना धर्म समझते हैं, वे इस लेख से क्यों प्रसन्न होंगे, यह समझ में नहीं आता।

'गौपूजा' लेख पर एक आंदोलन शुरू कर देने का प्रयास करने वाले लोगों की वास्तविक स्थिति क्या है, इस पर और अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। मैं स्वीकार करता हूँ कि उन लोगों को जिन्होंने इस विषय में अधिक अध्ययन नहीं किया है, मेरे लेख में यह तथ्य पढ़ कर ठीक उसी प्रकार आघात लगा होगा, जिस प्रकार मुझे पहलेपहल लोकमान्य तिलक, डाक्टर भगवानदास, श्री जयचंद्र विद्यालंकार इत्यादि की कृतियों को पढ़ कर लगा था। ऐसे लोगों को ज्ञात होना चाहिए कि इतिहास हमारी भावनाओं के प्रति न कोई निष्ठा रखता है और न कोई ममत्व।

लोकमान्य तिलक ने जब यह घोषित किया था कि अथर्ववेद के मंत्रों में कुछ प्राचीन खाल्दी (अरबी) के शब्द मिलते हैं तो उन को भी कुछ कम आघात नहीं लगा होगा, क्योंकि हम पीढ़ियों से वेदों को पृथ्वी पर आया हुआ प्रथम ईश्वरी ज्ञान मानते रहे हैं। किंतु लोकमान्य तिलक इतिहास के वैज्ञानिक शोधक थे अतः उन्होंने 'सर आर.जी. भंडारकर कमेसोरेशन वाल्यूम' में 'दी कल्डियन एंड इंडियन वेवाज़' शीर्षक एक लेख लिख कर इस विषय पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

प्राचीन काल में आर्य जन क्या करते थे, इस से हमें कुछ विशेष लेनादेना नहीं है। इसीलिए अपने पहले लेख में मैंने इस संबंध में केवल थोड़ी सी ही पंक्तियाँ लिखी थीं। उन को लिखने की भी आवश्यकता केवल इसलिए अनुभव होती है क्योंकि प्राचीन ग्रंथों के नाम पर हमारी उन्नति के प्रत्येक प्रयास में बाधा उपस्थित की जाती है। शास्त्रों से ज्ञात होता है कि यज्ञ में गाय तथा अन्य प्राणियों की बलि जब कुछ महर्षियों को अखरने लगी, और जब उन्होंने उसे बंद कराने का प्रयास किया, तब उन का विरोध प्राचीन धर्मशास्त्रों की आज्ञा के आधार पर ही किया गया था। कोई आश्चर्य नहीं, यदि आज बेकार गायों को जीवित रख कर पुष्ट, सुदृढ़ गायों को इंचइंच कर के भूखा मार डालने के लिए भी प्राचीन धर्मशास्त्रों का सहारा लिया जा रहा है।

यह गाय के साथसाथ राष्ट्र को भी मार डालने की तैयारी है। जिन सज्जनों के कोमल हृदय को बेकार गाय की हत्या कर देने की कल्पना मात्र से आघात लगता है, उन के हृदय को हमारे राष्ट्र की भयानक बालमृत्युओं की संख्या क्या किंचित भी ठेस नहीं पहुँचाती? या उन्हें यह नहीं मालूम कि जब तक गाय का शुद्ध दूध अधिक मात्रा में हमें नहीं मिलेगा, तब तक बालमृत्युओं की संख्या बढ़ती ही जाएगी?

गाय की हर तरह दुर्वशा करने के साथ गौपूजा का जो दम भरते हैं, और इस के लिए आंदोलन चला रहे हैं, वे एक बार इतिहास को भी तो देखें कि इस अंधी बेकार पूजा से भारत, विशेषतः हिंदुओं की, कितनी हानि हुई है। जब भी बाहर से कोई आक्रमणकारी भारत में घुसा, केवल गाय को अपनी सेना के आगे कर देने से वह विजयी हो जाता था, और हिंदू न केवल उन गायों को ही बचा पाते थे बल्कि अपना सर्वस्व, अपनी स्त्रियाँ व बच्चे, व देश का गौरव भी गंवा बैठते थे।

1857 की आजादी की लड़ाई का भी इस सिलसिले में उल्लेख किया जा रहा है। इन आलोचकों का कहना है कि हिंदू सेना ने इसलिए बगावत कर दी थी कि कारतूस में

चरबी लगती थी। आजादी के सिपाहियों पर यह कितना बड़ा लांछन है! उन्हें देश का खयाल नहीं था, कारतूसों का खयाल था! यदि यही बात थी तो उन्होंने मुसलमान मुगल बादशाह के झंडे के नीचे रह कर लड़ना क्यों स्वीकार किया था? मुसलमान तो साफ तौर से गौभक्षक थे।

इन धर्म के ठेकेदारों से कोई यह भी पूछे कि उन्होंने अंगरेजों को भारत से भगाने में कितनी मदद दी-जब कि अंगरेज सब से अधिक गौभक्षक थे। जो आज ऊपर से गाय की अंधी पूजा कर के उसे वास्तव में तिलतिल कर के भूखा मारने के समर्थक हैं, उन्होंने हिंदुओं को गौभक्षकों से आजादी दिलवाने में कितना हाथ बंटाया था? उस समय तो उन्हें 'शायद वार एफर्ट' (युद्ध सहायता) कर के हेर नाजायज तरीके से धन कमा कर अपने सफेद

प्रभुओं को प्रसन्न करने से ही फुरसत नहीं थी। 'गौपूजा' और 'गौरक्षा' में कोई किसी प्रकार का संबंध नहीं है। आज तक हम गौपूजा करते रहे हैं। पर इतनी लंबी अवधि तक भी गौपूजा कर के हम गौरक्षा नहीं कर पाए हैं। गौरक्षा गाय की पूजा किए बिना ही हो सकती है, और हो रही है-जैसे सारे संसार में हो रही है, और जहाँ दूध की नदियाँ बह रही हैं। जब तक गौपूजा को गौरक्षा से अलग नहीं किया जाएगा, गौपूजा के असली माने गौहत्या ही रहेंगे।

मैं अपने पाठकों एवं आलोचकों से विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि गौरक्षा संबंधी मेरे सुझावों को वे एक बार फिर ध्यान से पढ़ें, और बेकार की भावनाओं को हटा कर इस समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार करें।